



भारतीय ज्ञान परंपरा और हिंदी नवगीत

डॉ. संतोष कुमार सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज, उत्तर प्रदेश, भारत

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.23390127>

Corresponding Author: डॉ. संतोष कुमार सिंह

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में लय, नाद और छंद को केवल काव्य-सौंदर्य का उपकरण नहीं, बल्कि जीवन, चेतना और सृष्टि की मूल संरचना माना गया है। वेदों की ऋचाएँ, सामवेद की गेय परंपरा, नाट्यशास्त्र की रस-सिद्धि और छंदःशास्त्र की व्यवस्था इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं कि भारतीय साहित्य की चेतना मूलतः लयात्मक रही है। हिंदी कविता की गीत-परंपरा इसी सांस्कृतिक स्मृति की उत्तराधिकारी है, जो आधुनिक काल में नवगीत के रूप में विकसित होती है। प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य हिंदी नवगीत को भारतीय ज्ञान परंपरा के आलोक में समझना तथा उसकी लयात्मक, सामाजिक और सांस्कृतिक अर्थवत्ता का विश्लेषण करना है। अध्ययन में ठाकुर प्रसाद सिंह से लेकर शम्भूनाथ, नईम, सोम ठाकुर, देवेन्द्र कुमार 'मुनिवर', केदारनाथ सिंह, उमा कांत मालवीय और हरिवंश राय बच्चन तक की नवगीत-परंपरा का आलोचनात्मक विवेचन किया गया है। नवगीत में लोक, प्रकृति, श्रम, प्रेम, परिवार, किसान और स्त्री जैसे सामाजिक सरोकार लयात्मक संवेदना के साथ अभिव्यक्त होते हैं। शोधपत्र यह भी स्पष्ट करता है कि मुक्तछंद की व्यापक स्वीकृति के बावजूद कविता से लय का पूर्ण विच्छेद संभव नहीं हुआ है। दुष्यंत कुमार, जगदीश गुप्त और अन्य आलोचकों की चिंताओं के संदर्भ में यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है कि नवगीत समकालीन कविता को स्मरणीयता, संप्रेषणीयता और सामाजिक सम्बल प्रदान करता है। निष्कर्षतः हिंदी नवगीत को भारतीय ज्ञान परंपरा की एक जीवंत, आधुनिक और सांस्कृतिक निरंतरता के रूप में देखा जा सकता है।

मूल शब्द: भारतीय ज्ञान परंपरा, नवगीत, लय और नाद, सामवेद, गीत-परंपरा, लोक-संवेदना, सामाजिक यथार्थ, हिंदी कविता

प्रस्तावना

भारतीय ज्ञान परंपरा की मूल चेतना लय, नाद और छंद में निहित रही है। भारतीय मनीषा ने ज्ञान को कभी केवल बौद्धिक या सूचनात्मक वस्तु के रूप में ग्रहण नहीं किया, बल्कि उसे अनुभूत, गेय और स्मरणीय बनाया। वेदों की ऋचाएँ, मंत्रों का उच्चारण, सामगान की परंपरा और नाट्यशास्त्र की रस-सिद्धि—ये सभी इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि भारतीय संस्कृति में ज्ञान का संप्रेषण लय के बिना अधूरा माना गया। सामवेद इस दृष्टि से विशेष महत्व रखता है, क्योंकि वह ऋग्वेद की ऋचाओं को संगीतात्मक रूप देकर यह स्पष्ट करता है कि ज्ञान तभी प्रभावी होता है जब वह नाद और लय के साथ संप्रेषित हो। सामगान में स्वर, ताल और छंद का समन्वय केवल सौंदर्य की सृष्टि नहीं करता, बल्कि सामूहिक चेतना का निर्माण करता है। यही कारण है कि वैदिक परंपरा में ज्ञान का संरक्षण और प्रसार मौखिक, गेय और लयबद्ध रहा। भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में

नाद, ताल और लय को रस की उत्पत्ति का मूल आधार माना गया है। रस को केवल भावनात्मक प्रतिक्रिया नहीं, बल्कि दर्शक और प्रस्तुति के बीच होने वाली एक गहरी अनुभूति माना गया है। यह अनुभूति तभी संभव होती है जब शब्द, अर्थ और लय एक साथ मिलकर कार्य करें। पिंगल का छंदःशास्त्र यह स्थापित करता है कि छंद मात्र गणितीय संरचना नहीं, बल्कि अनुभूति का अनुशासन है, जो कवि और पाठक दोनों को एक लयात्मक अनुशासन में बाँधता है। प्रकृति स्वयं लयात्मक है—ऋतुओं का क्रम, दिन-रात का चक्र, ज्वार-भाटा, श्वास-प्रश्वास और हृदय की गति—और इसी कारण भारतीय काव्य परंपरा में प्रकृति और लय का संबंध अत्यंत गहरा दिखाई देता है। इस पृष्ठभूमि में देखा जाए तो कविता भारतीय ज्ञान परंपरा में केवल कला नहीं, बल्कि जीवन-दर्शन का एक आवश्यक माध्यम रही है। हिंदी कविता की गीत-परंपरा इसी सांस्कृतिक स्मृति की उत्तराधिकारी है। विद्यापति, सूर और मीरा की रचनाएँ

गीतात्मकता के बिना कल्पनीय नहीं हैं। इन कवियों के यहाँ गीत केवल काव्य-रूप नहीं, बल्कि जीवन-अनुभव की सहज और सामूहिक अभिव्यक्ति है। सूर के पदों में भक्ति के साथ लोक-जीवन की धड़कन है, मीरा के गीतों में व्यक्तिगत प्रेम सामूहिक आध्यात्मिक अनुभव में बदल जाता है, और विद्यापति की कविता में श्रृंगार लोक-संस्कृति से गहरे रूप में जुड़ा है। छायावाद में प्रसाद, निराला और महादेवी ने गीत को आत्मानुभूति, सौंदर्यबोध और दार्शनिक संवेदना का माध्यम बनाया। विशेष रूप से निराला के यहाँ गीत केवल भावुक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक विद्रोह और मानवीय असंतोष का स्वर भी बनते हैं। इस प्रकार गीत-परंपरा धीरे-धीरे सामाजिक चेतना की वाहक बनती है। आधुनिक काल में जब हिंदी कविता मुक्तछंद और गद्यात्मकता की ओर अग्रसर हुई, तब यह आशंका भी प्रकट हुई कि कविता अपनी लयात्मक पहचान खो सकती है। आधुनिकता के दबाव में कविता का बौद्धिक और वैचारिक पक्ष तो सशक्त हुआ, किंतु उसकी स्मरणीयता और कंठस्थता पर प्रश्नचिह्न लगने लगे। इसी संदर्भ में नवगीत का महत्व स्पष्ट होता है। नवगीत न तो परंपरागत गीत की पुनरावृत्ति है और न ही आधुनिक कविता से पलायन; वह परंपरा और आधुनिकता के बीच एक जीवंत सेतु के रूप में विकसित होता है। नवगीत भारतीय ज्ञान परंपरा की लयात्मक चेतना को आधुनिक सामाजिक यथार्थ से जोड़ता है और इस प्रकार कविता को पुनः जीवन के निकट लाता है। हिंदी नवगीत की आधार-भूमि के निर्माण में ठाकुर प्रसाद सिंह का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 1950-60 के दशक में संथाल समाज के बीच रहते हुए उन्होंने लोक-संस्कृति, श्रम, प्रकृति और प्रेम को अपने गीतों का विषय बनाया। यह वह समय था जब हिंदी कविता का मुख्य केंद्र नगर और शिक्षित मध्यवर्ग बनता जा रहा था, जबकि ठाकुर प्रसाद सिंह ने आदिवासी समाज और ग्रामीण जीवन को काव्य का केंद्र बनाया। उनका संग्रह बंसी और बादल नवगीत की दिशा में एक निर्णायक प्रस्थान-बिंदु माना जा सकता है। इन गीतों में स्त्री का सौंदर्य अलंकारिक नहीं, बल्कि श्रम और जीवन-संघर्ष से उपजा हुआ है। प्रेम भी यहाँ किसी आदर्श लोक में नहीं, बल्कि सामाजिक दूरी और वर्ग-भेद के यथार्थ में स्थित है—“मेरे घर के पीछे लाल चंदन है / तुम ऊँचे टोले की, मैं नीचे टोले का।” यह पंक्तियाँ प्रेम के साथ-साथ सामाजिक संरचना को भी उद्घाटित करती हैं। यहाँ वर्ग-चेतना आक्रामक राजनीतिक स्वर में नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना के रूप में प्रकट होती है। ठाकुर प्रसाद सिंह के गीत यह सिद्ध करते हैं कि नवगीत की जड़ें लोक-जीवन और भारतीय भूमि में गहराई से धँसी हुई हैं। शम्भूनाथ के नवगीत इस परंपरा को सांस्कृतिक गहराई प्रदान करते हैं। उनके गीतों में उत्सव, पर्व, लोक-आस्था, परिवार और प्रेम की निरंतर उपस्थिति मिलती है। वे लोक-लय को केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक संवाद के लिए प्रयुक्त करते हैं। “बगिया में नाचेगा मोर उसको देखेगा कौन” जैसे गीत लोक-लय के सहारे आधुनिक अकेलेपन और संबंधों की रिक्तता को व्यक्त करते हैं। इसी प्रकार “सोन हँसी हँसते हैं लोग, हँस-हँस के डसते हैं लोग” जैसी पंक्तियाँ सामाजिक विडंबना को अत्यंत सहज और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती हैं। शम्भूनाथ की

विशेषता यह है कि वे परंपरा को रूढ़ि के रूप में नहीं, बल्कि जीवंत सांस्कृतिक स्मृति के रूप में ग्रहण करते हैं। उनके गीत यह संकेत देते हैं कि लोक-संस्कृति आधुनिक जीवन में भी अर्थवान बनी रह सकती है और नवगीत को सांस्कृतिक निरंतरता प्रदान कर सकती है। नईम के नवगीत आधुनिक सभ्यता के संकट को प्रकृति और मिथकीय बिंबों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। उनके यहाँ पहाड़, नदी और जंगल केवल प्राकृतिक दृश्य नहीं, बल्कि मानवीय चिंता और नैतिक संकट के प्रतीक बन जाते हैं। “वनों को निर्विघ्न होना देखना कितना कठिन है” जैसी पंक्तियाँ केवल पर्यावरणीय संकट की ओर संकेत नहीं करती, बल्कि उस सांस्कृतिक विघटन की ओर भी इंगित करती हैं जिसमें मनुष्य प्रकृति से अपने नैतिक संबंध खोता जा रहा है। “आज साकेत में ही सीता हरण देखना कितना कठिन है” जैसी पंक्तियाँ मिथकीय संदर्भ के माध्यम से समकालीन समाज के नैतिक पतन और स्त्री-असुरक्षा पर प्रश्न उठाती हैं। इस प्रकार नईम के नवगीत भारतीय ज्ञान परंपरा में निहित प्रकृति, नैतिकता और मनुष्यता के संबंध को आधुनिक संदर्भों में पुनः स्थापित करते हैं। 1990 के दशक में सोम ठाकुर ने नवगीत को पारिवारिक विडंबनाओं और आंतरिक संघर्षों से जोड़ा। उनके गीतों का केंद्र परिवार है, किंतु वह आदर्श और स्थिर इकाई के रूप में नहीं, बल्कि टूटन, समझौतों और असुरक्षा से ग्रस्त संरचना के रूप में सामने आता है। “ध्वंस छन से गठबंधन कुछ हमने ऐसे किया” जैसी पंक्तियाँ आधुनिक जीवन की अनिवार्य विडंबनाओं को उजागर करती हैं। उनके गीतों में संध्या, प्रतीक्षा और लौटने की आकांक्षा जैसे बिंब बार-बार आते हैं—“जाओ पर संध्या के संग लौट आना तुम।” ये बिंब आधुनिक मनुष्य की अनिश्चितता और संबंधों की नाजुकता को रेखांकित करते हैं। सोम ठाकुर नवगीत में आत्मसंघर्ष और विडंबना का ऐसा स्वर जोड़ते हैं, जो इसे भावुकता से बचाकर जीवन-यथार्थ के अधिक निकट ले जाता है। देवेन्द्र कुमार ‘मुनिवर’ के नवगीत ग्रामीण जीवन की सच्चाइयों का प्रामाणिक दस्तावेज हैं। उनका संग्रह एक पेड़ चाँदनी ग्रामीण समाज में व्यक्ति पर पड़े सामाजिक और आर्थिक दबावों को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है। “हम ठहरे गाँव के बोझ हुए / सब रिश्ते कंधे और पाँवों के” जैसी पंक्तियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि ग्रामीण जीवन में रिश्ते केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि आर्थिक और सामाजिक उत्तरदायित्वों से भी जुड़े होते हैं। “बकरी के दाम बिक गए बच्चे उमराव के” जैसी पंक्तियाँ बाजारवादी व्यवस्था की क्रूरता और ग्रामीण गरीबी की त्रासदी को उजागर करती हैं। प्रेम पर लिखे उनके गीत भी जीवन-संघर्ष से कटे हुए नहीं हैं—“नदी, झील, सागर से प्रेम मत करना / इनको आता है लहरों सा छोड़ना।” मुनिवर के नवगीत मानवीय अनुभव की सच्चाई और भारतीय ग्रामीण चेतना को नवगीत में स्थायी स्थान देते हैं। केदारनाथ सिंह, उमा कांत मालवीय और हरिवंश राय बच्चन जैसे कवि परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य करते हैं। केदारनाथ सिंह ने कविता की शुरुआत गीत से की और बाद में मुक्तछंद के महत्वपूर्ण कवि बने, किंतु उनकी कविता से लय कभी विलुप्त नहीं हुई। उनके यहाँ लोक-स्मृति और आधुनिक बोध का संतुलन दिखाई देता है। उमा कांत मालवीय के मेहंदी और महावर में स्त्री, परिवार और

सामाजिक संबंधों की संवेदनशील प्रस्तुति मिलती है, जिसमें घरेलू जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियाँ लयात्मक रूप में अभिव्यक्त होती हैं। हरिवंश राय बच्चन के गंधर्व ताल और अगाही जैसे संग्रह यह सिद्ध करते हैं कि गीतात्मकता आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं-अकेलापन, विस्थापन, नैतिक संकट-को व्यक्त करने में भी सक्षम है। मुक्तछंद को प्रायः लय-विहीन मान लिया जाता है, किंतु यह धारणा एक सरलीकरण है। छंद का अभाव लय का अभाव नहीं होता। कविता की लय शब्दों के आंतरिक क्रम, वाक्य-विन्यास और भाव-प्रवाह में भी विद्यमान रहती है। दुष्यंत कुमार ने कविता की भूमिका में यह चिंता व्यक्त की है कि यदि कविता जीवन का सम्बल नहीं बनती, तो वह अपने उद्देश्य में विफल है। जगदीश गुप्त और राजेंद्र सिंह जैसे आलोचकों ने भी समकालीन कविता में लय-विस्मृति को एक गंभीर संकट के रूप में देखा है। इस संदर्भ में नवगीत स्मरणीयता, संप्रेषणीयता और सामाजिक संवाद की क्षमता बनाए रखता है और कविता को पुनः जन-संवेदना से जोड़ता है। अंततः कहा जा सकता है कि हिंदी नवगीत भारतीय ज्ञान परंपरा की लयात्मक चेतना का आधुनिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विस्तार है। यह लोक, प्रकृति, श्रम, प्रेम और समकालीन यथार्थ को जोड़ते हुए कविता को जीवन-दर्शन और सम्बल प्रदान करता है। समकालीन कविता के लय-संकट के बीच नवगीत भारतीय सांस्कृतिक स्मृति को सुरक्षित रखते हुए आधुनिक संवेदना की सशक्त और विश्वसनीय अभिव्यक्ति करता है। इसलिए नवगीत की समृद्ध परंपरा को समझना, संरक्षित करना और आगे बढ़ाना भारतीय साहित्य ही नहीं, बल्कि भारतीय ज्ञान परंपरा को समझने की दृष्टि से भी अत्यंत आवश्यक है।

संदर्भ

1. सामवेद – गीताप्रेस, गोरखपुर।
2. भरत मुनि – नाट्यशास्त्र, चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी।
3. पिंगलाचार्य – छंदः शास्त्र, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी।
4. रामचंद्र शुक्ल – हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
5. ठाकुर प्रसाद सिंह – बंसी और बादल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1958।
6. शम्भूनाथ – चयनित गीत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. नईम – चयनित नवगीत, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
8. सोम ठाकुर – चयनित नवगीत, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
9. देवेन्द्र कुमार 'मुनिवर' – एक पेड़ चाँदनी, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
10. केदारनाथ सिंह – अकाल में सारस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
11. उमा कांत मालवीय – मेहंदी और महावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
12. हरिवंश राय बच्चन – गंधर्व ताल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
13. हरिवंश राय बच्चन – अगाही, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।
14. नामवर सिंह – कविता के नए प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
15. दुष्यंत कुमार – साए में धूप (भूमिका सहित), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
16. शम्भूनाथ – कविता की राजनीति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
17. जगदीश गुप्त – समकालीन हिंदी कविता, लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
18. राजेंद्र सिंह – नवगीत : शिल्प और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
19. कपिल कपूर – भारतीय काव्यशास्त्र की अवधारणा, डी.के. प्रिंटवर्ल्ड, नई दिल्ली।
20. गोरखनाथ पांडे – जनगीत और प्रतिरोध, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

Creative Commons (CC) License

This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.